Posted on
24th of every advance month
Published on 19-20 every month

Registered with RNI
RNI No. DELHIN/2006/17288
DL(S)-17/3277/2024-26
Price Rs. 25

फरवरी 2025 वर्ष : 20 अंक : 02 कवर सहित पृ. सं. 44 ISSN 2277-5331

हाशिये की आवाज़

संघर्षरत लोगों की प्रथम पूर्व समीक्षित मासिक पत्रिका

आपकी अपनी पत्रिका आपके घर पर सदस्यता के लिए क्यूआरकोड स्कैन करें।

INTEGRATED SOCIAL INITIATIVES
+91 74283 81271

7428381271@okbizaxis

यह आवाज़ महज़ आवाज़ नहीं, सामाजिक परिवर्तन हेतु आन्दोलन है!

नीचे छपा कूपन भरकर भेज दीजिए।

नाम : ....

डाक पता :...

...........................पिन : ☐☐☐☐☐☐

ईमेल : ....

मो.नं. ....

मूल्य : एक प्रति 25 ₹.
(रजिस्टर्ड पोस्ट) : वार्षिक 550 ₹., द्विवार्षिक 1080₹.,
(साधारण पोस्ट) : वार्षिक 300 ₹., द्विवार्षिक 575₹.,
त्रिवार्षिक 850₹.
दस कॉपी खरीदने पर 10% की छूट
सहयोग राशि भुगतान का माध्यम-चेक/ मनीऑर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/ नकद भुगतान निम्न पते पर भेजें।

वितरण अधिकारी -रूबेन मिंज
व्हाट्सएप करें-9289017961

'हाशिये की आवाज़'
इंटीग्रेटेड सोशल इनिशिएटिव्स
10-इन्स्टीट् यूशनल एरिया
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
फोन : 011-49534156/57
Email : publication@isidelhi.org.in
hka@isidelhi.org.in,
hashiyekiaawaz@gmail.com
Fax : 011-24690660/49534101

महापुरुषों को हथियाने की साज़िश!

प्रकाशक एवं मुद्रक डेन्जिल फर्नांडिस, इंटीग्रेटेड सोशल इनिशिएटिव्स, 10 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली से प्रकाशित एवं डॉन बॉस्को सोसाईटी फॉर प्रिंटिंग एण्ड ग्राफिक ट्रेनिंग, ओखला रोड, नयी दिल्ली-25 से मुद्रित। संपादक -भिनसेन्ट एक्का, हाशिये की आवाज
(इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. ऐक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)

हाशिये की आवाज़

संघर्षरत लोगों की प्रथम पूर्व समीक्षित मासिक पत्रिका

https://www.facebook.com/profile.php?id=100027354412788

ISSN 2277-5331(हाशिये की आवाज़)
संघर्षरत लोगों की प्रथम पूर्व समीक्षित मासिक पत्रिक
(PEER-REVIEWED, JOURNAL)
फरवरी-2025, वर्ष-20, अंक-02, पृष्ठ-44

'इंडियन ओवरसीज बैंक' का आंशिक आर्थिक सहयोग

संपादक
डॉ. भिनसेन्ट एक्का

सहायक संपादक
डॉ. सैयद परवेज

संपादन सहयोगी
पास्कल तिर्की
अरुण कुमार उराँव

समीक्षित समिति
डॉ. थोमस पेरूमालिल
मोहनदास नैमिशराय
प्रो. कहकशाँ एहसान साद
डॉ. प्रमोद रंजन, डॉ. कौशल पंवार
डॉ. मोहम्मद आरिफ
डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'
डॉ. हंसराज 'सुमन', डॉ. प्रमोद मेहरा

ब्यूरो संवाददाता : राज वाल्मीकि

सम्पादकीय कार्यालय
इंटीग्रेटेड सोशल इनिशिएटिव्स
10-इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003
फोन : 011-49534157/132/133
वेब : www.isidelhi.org.in
ईमेल : hka@isidelhi.org.in
hashiyekiaawaz@gmail.com

सदस्यता शुल्क
वार्षिक सामान्य डाक : ₹ 300
रजिस्टर्ड पोस्ट : ₹ 550
द्विवार्षिक सामान्य डाक : ₹ 575
रजिस्टर्ड पोस्ट : ₹ 1080
सदस्यता शुल्क-डी.डी./ पोस्टल ऑर्डर/ मनीऑर्डर द्वारा इंटीग्रेटेड सोशल इनिशिएटिव्स के नाम पर भेजें।
सदस्यता एवं विज्ञापन हेतु प्रकाशन अधिकारी से सम्पर्क करें।
दूरभाषा : 011-49534132/133
मोबाइल : 09289017961
ईमेल: publication@isidelhi.org.in

इस अंक में

महापुरुषों को हथियाने की साजिश! (सम्पादकीय) 1
डॉ. सैयद परवेज़
प्रजातंत्र और संसदीय गणतंत्र के दो अपरिहार्य स्तंभ (शोध आलेख) 2
दिनेश आनन्द
बहुजन महानायकों पर दाँव खेलते ब्राह्मणवादी संगठन (शोध आलेख) 8
डॉ. कनक लता
हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद : प्रेमचंद के दृष्टिकोण से साहित्य का उद्देश्य (शोध आलेख) 12
कौशल कुमार पटेल
क्या बहुजन नेताओं को संविधान दिवस मनाने का अधिकार है? (आलेख) 16
कमलेश मधोलिया
महापुरुषों को हड़पने की साजिश (आलेख) 22
प्रो. शेख मोईन शेख नईम
आंबेडकर किताओं में हैं, और मूर्तियों में भी (प्रसंग) 24
विकास वर्मा
सत्ताधारी वर्ग की सांस्कृतिक गुलामी में डूबा बहुजन समाज (आलेख) 25
संजीव खुदशाह
भारतीय छात्र संसद में देश का तार्किक विवरण (प्रसंग) 27
डॉ. अरुण कुमार उराँव
उर्दू पत्रकारिता के समकालीन मुद्दे और चुनौतियाँ (आलेख) 28
डॉ. अभय कुमार
सत्यनारायण की कथा (कथा) 32
डॉ. पूरन सिंह
वंश (कथा) 34
अब्दुल गफ्फार
जहाँ बोलना ही सजा है, अनाम सामाजिक योद्धा (लघुकथा) 37
नीतिशा खलखो
जीवन के विरोधाभासों का यथार्थ चित्रण है, 'रूदादे सफर' (पुस्तक समीक्षा) 38
हिमांशु कुमार
कवि की पंक्तियाँ 41
डॉ. सुशील कुसुमाकर की तीन कविताएँ

सभी चित्र साभार : गूगल एवं सोशल मीडिया

हाशिये की आवाज़ में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। सम्पादक तथा प्रकाशक लेखों में व्यक्त विचारों के लिए पी.आर.बी. ऐक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी हैं।

कवि की पंक्तियाँ

डॉ. सुशील कुसुमाकर

अँधेरे में परदे के पीछे

अंधेरी रात! हर तरफ ख़ामोशी! कहीं कोई नहीं...!
केवल महल के आराम–ए–ख़ास में हल्की–सी रोशनी।
हल्की रोशनी में परदे के पीछे वे दोनों बैठे
बिलकुल आस–पास, पर अपने–अपने में खोये–से।
सहसा, वज़ीर–ए–आज़म ने नज़रें उठायी–
कहिये, सब ठीक–ठाक तो हैं न? गाँव, नगर, राजधानी,
सरहद और किले सब चाक–चौबन्द हैं?
वज़ीर–ए–दाखिला चौंकता हुआ सिर उठाया।
हुज़ूर, आपके रहम–ओ–करम से फल–फूल रहें
वज़ीर, संतरी, कारिन्दे, सिपाही और साहूकार सभी।
और हमारी रिआया...?
वज़ीर–ए–आज़म ने सवालिया नज़रों से देखा उसे।
वह दिन काट रही आपकी खैरात पर,
उसे कोई मतलब नहीं इल्म और दुनिया–जहान से
वह इसी में खुश है–आप उसके शंहशाह हैं,
उसके लिए सब वहीं आप जो बोलें या ऐलान करें।
वज़ीर–ए–आज़म उसे देखकर मुस्कुराया।
जहाँपनाह, हर तरफ पढ़े जा रहे आपके क़सीदे
और लहरा रहा आपका ही परचम...।
लेकिन, वह बोलते–बोलते चुप हो गया।
वज़ीर–ए–आज़म ने तिरछी नज़रों से देखा उसे।
चुप क्यों हो गये? कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं?
वह पल भर चुप्पी के बाद बोला।
जहाँपनाह कहीं कोई गड़बड़ नहीं, सबकुछ दुरूस्त है,
किसकी मजाल कुछ करे बगैर आपकी इजाज़त, लेकिन...।
लेकिन क्या...? वज़ीर–ए–आज़म थोड़ा झल्ला–सा गया।
हुज़ूर, एक शायर आया है अपनी रियासत में।
शायर आया...। तो अपने दो उसे...।
तख़्त पर बैठे वज़ीर–ए–आज़म पूरी ताक़त से
अपनी चौड़ी छाती फुलाते हुए उसे नज़र भर देखा।
क्या बिगाड़ लेगा वह, हमारा या तुम्हारा, तुम तो
बहुत बुज़दिल निकले, डर गये! वो भी अदने–से–शायर से।
वज़ीर–ए–आज़म ने ज़ोर का ठहाका लगाया।
हुज़ूर, वो कुछ बिगाड़ तो नहीं पायेगा, रहता है फ़कीरों–सा,
लेकिन, वो बहुत दानिशमन्द और समझदार है।
वह अपना चेहरा वज़ीर–ए–आज़म के करीब ले आया।
हुज़ूर, वो अपनी शायरी से अलख जगा रहा है लोगों में,
वो सबको बता रहा गरीबी, बेरोज़गारी और
भुखमरी की असली वजह, वो समझा रहा लोगों को
क्योंकर धोखे से दाख़िल हो गये दरबार में,
क्योंकर रियासत की सारी दौलत,
सारे महकमे कर रहे साहूकार दोस्तों के हवाले
साज़िशन वैसे लड़ाते रहे उन्हें आपस में और
क्योंकर इबादतगाहों
और इदारों का इस्तेमाल कर रहे उनको बरगलाने
और मूर्ख बनाने में,
वो आगाह कर रहा आवाम को आपके मनसूबों से,
हुज़ूर, अब आप ही फ़रमाइये, ये मौजूँ सवालात नहीं क्या...?
वज़ीर–ए–आज़म भीतर से थोड़ा डगमगाया, लेकिन,
फिर कुछ सोचते हुए तख़्त से उठ गया–
आप ख़ास जासूसों को इत्तला कर दीजिये–वो
कमबख़्त शायर! जहाँ भी मिले,
जिस भी हाल में मिले, ख़ामोश कर दें उसकी जुबान!
लेकिन, ख़्याल रहे किसी को इसकी भनक न लगने पाये, / और दरबारी अखबारनवीस के ज़रिये चहुँओर फैला दो / ये ख़बर कि ख़ामोश कर दिया हमेशा के लिये दुश्मन / जासूसों ने / वज़ीर–ए–आज़म के बेहद अज़ीज़ एवं / दानिशमन्द / नौजवान शायर की और वे इसका / बदला लेकर रहेंगे...!

सपने

सपने उम्मीद भरते हैं
खूबसूरत सुकून भरी जिंदगी के।
वो हर रोज शहर में
सपने बेचता है
और हम उसके सपनों को
पाने के चक्कर में खो देते हैं
अपनी जिंदगी की छोटी छोटी खुशियाँ और सपने।
सपने तो मैं भी देखता हूँ
लेकिन मैं सपनों का
सौदागर नहीं हूँ।

उलझने

कोशिश में हैं, कुछ करने को
कुछ बेहतर, बेहतर से बेहतर
लेकिन
उलझने हैं कि
न कुछ करने देती हैं
न आगे बढ़ने देती हैं
जिन्दगी में।
हाँ, तुम साथ हो
तो पूरा करेंगे
खुली आंखों देखे ख़्वाबों को...!

(कवि-चर्चित फिल्म 'फेसबुक वाला प्यार' के लेखक हैं।)

ईमेल : sushil.kusumakar@hotmail.com

आलेख

उर्दू पत्रकारिता के समकालीन मुद्‌दे और चुनौतियाँ

उर्दू पत्रकारिता का गौरवमयी इतिहास दो सौ साल से भी पुराना है। संभवतः उस समय हिंदी अखबारों का प्रकाशन शुरू भी नहीं हुआ था। उर्दू का पहला अखबार 'जाम-ए-जहानुमा' सन् 1822 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। यह अखबार किसी मुसलमान ने नहीं, बल्कि पंडित हरिहर दत्त नामक एक गैर-मुस्लिम ने शुरू किया था। उर्दू पत्रकारिता ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ध्यातव्य है कि उर्दू के सहाफी मौलवी मोहम्मद बाकिर ने सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों के खिलाफ साहसिक पत्रकारिता की, बाद में अंग्रेजों ने उन्हें पकड़कर तोप से उड़ा दिया था; प्रस्तुत है यह आलेख।

डॉ. अभय कुमार

उर्दू और हिंदी मूलतः एक ही भाषा है। सच यह है कि केवल लिपि या कुछ शब्दों के भिन्न होने से ये भाषाएँ अलग नहीं हो जातीं। भाषा की आत्मा उसकी वाक्य संरचना में होती है जो हिंदी एवं उर्दू दोनों में समान है। उर्दू समझने वाला व्यक्ति हिंदी आसानी से समझ सकता है, और यही बात हिंदी जानने वालों के लिए भी लागू होती है। लेकिन लंबे समय से सांप्रदायिक राजनीति इन भाषाओं को अलग करने का प्रयास करती आ रही है।

हिंदी को 'हिंदुओं' की भाषा और उर्दू को 'मुसलमानों' की जबान कहकर उनके बीच विभाजन की कोशिश की गई है। अंग्रेजों से आजादी मिलने और पाकिस्तान बनने के बाद हालात इस तरह 'कम्युनल' हो गए कि उर्दू को अपने ही मुल्क में वह स्थान नहीं मिला, जो उसे मिलना चाहिए था। उर्दू को कई मौकों पर सरकारी उपेक्षा और भेदभाव का सामना करना पड़ा। उदाहरण के तौर पर, कई सरकारी स्कूलों में उर्दू शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई। देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में उर्दू को विशेष नुकसान हुआ, जहाँ बच्चों को उर्दू की तालीम से महरूम रखने की बड़ी–बड़ी साजिशें रची गई। लेकिन एक जिंदा भाषा को समाप्त करना इतना आसान नहीं था।

इन विषम परिस्थितियों में उर्दू प्रेमियों ने उर्दू को जीवित रखने के लिए कड़ी मेहनत की। धर्मनिरपेक्ष विचारधारा वाले लेखकों ने उर्दू के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने फिल्म, सिनेमा, संगीत और टीवी के जरिए उर्दू को घर–घर तक पहुँचाया। यही वजह है कि बहुत से लोग जो उर्दू पढ़ना नहीं जानते, उर्दू को अच्छी तरह समझते और बोलते भी हैं।

उर्दू के प्रसार में दीनी मदरसों की भी भूमिका रही है। यह हकीकत है कि मदरसों में इस्लामी तालीम, अरबी और फारसी पर जोर दिया जाता है, मगर उत्तर भारत के अधिकांश मदरसों में अनौपचारिक रूप से शिक्षा का माध्यम उर्दू ही है। यही कारण है कि मदरसों में उर्दू फल–फूल रही है।

इसके अलावा, उर्दू के प्रसार में उर्दू अखबारों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आजादी के बाद यह आशंका थी कि उर्दू सहाफत खत्म हो जाएगी, क्योंकि विभाजन के बाद कई प्रमुख उर्दू अखबार और पत्रकार पाकिस्तान चले गए थे। इसके चलते भारत में एक बड़ा 'खला' पैदा हुआ। लेकिन उर्दू सहाफियों ने इस चुनौती का डटकर सामना किया। जल्द ही उर्दू पत्रकारिता फिर से अपने पैरों पर खड़ी हो गई। शुरुआती दिनों से ही उर्दू पत्रकारिता ने धर्म–निरपेक्षता और साम्प्रदायिक सद्‌भाव के जज़्बे से काम किया। उर्दू अखबारों ने सेक्युलर राष्ट्रवाद और 'डाइवर्सिटी' की विचारधारा को अपनाया और संकीर्ण सोच को खारिज किया।

आज भारत के विभिन्न हिस्सों से उर्दू के कई समाचार–पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में 'रोजनामा इंकलाब' ने बहुत कम समय में अपनी लोकप्रियता बढ़ाई है। यह समाचार पत्र उत्तर भारत के विभिन्न शहरों से एक साथ प्रकाशित होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आजादी से पहले यह अखबार मुंबई से प्रकाशित होता था, लेकिन करीब एक दशक पहले उत्तर भारत में प्रकाशन के लिए 'जागरण' समूह ने इस अखबार को अपने प्रबंधन में ले लिया। चूंकि जागरण समूह का 'दैनिक जागरण' पहले से ही एक बड़ा हिंदी समाचार पत्र रहा है, इसलिए 'रोजनामा इंकलाब' को शुरूआती दिनों से ही एक बड़ा 'इंफ्रास्ट्रक्चर' हासिल हुआ। मुंबई के अलावा, उत्तर भारत में इसका प्रकाशन दिल्ली, लखनऊ, वाराणसी, मेरठ, अलीगढ़, बरेली, गोरखपुर, कानपुर, इलाहाबाद, पटना, मुजफ्फरपुर और भागलपुर से एक साथ हो रहा है। अखबार की तरफ से यह दावा किया जाता है कि 'रोजनामा इंकलाब' भारत का शीर्ष उर्दू अखबार है, जिसके देशभर में पाँच लाख पाठक हैं और हजारों अन्य पाठक इसे ऑनलाइन पढ़ते हैं।

दिल्ली का एक प्रमुख उर्दू अखबार 'रोजनामा राष्ट्रीय सहारा' भी है, जिसका प्रबंधन सहारा समूह के पास है। यह अखबार एक साथ दिल्ली, लखनऊ, पटना, हैदराबाद, गोरखपुर, कानपुर, कोलकाता, मुंबई और बेंगलुरु से प्रकाशित हो रहा है। एक समय में यह अखबार बहुत लोकप्रिय था, मगर 'रोजनामा इंकलाब' के आने के बाद इसकी 'रीडरशिप' घट गई है। सूत्रों से पता चला है कि यहाँ काम कर रहे पत्रकारों और स्टाफ को तनख्वाह समय पर नहीं मिलती है और वेतन लंबे समय से बढ़ा भी नहीं है। दक्षिण भारत में उर्दू के प्रमुख समाचार पत्रों में 'सियासत' और 'मुंसिफ' का नाम लिया जाता है, जो उर्दू प्रेस के शीर्ष ब्रांड माने जाते हैं। इनके ऑनलाइन संस्करण देश और विदेश, विशेष रूप से खाड़ी देशों में, काफी लोकप्रिय हैं।

यह कहना कि उर्दू अखबार आज भी पुरानी तकनीक का उपयोग कर रहे हैं, सच नहीं है। यह भी कहना कि उर्दू अखबार समय के साथ बदलने को तैयार नहीं हैं, वास्तविकता नहीं है। तकनीक के साथ उर्दू मीडिया ने खुद को अपडेट किया है और मुद्रण में भी निरंतर सुधार हो रहा है। उर्दू अखबार अपने पाठकों की मांग के अनुसार खुद को बदल रहे हैं। उर्दू पत्रकारिता अब केवल प्रिंट मीडिया तक सीमित नहीं है। आज उर्दू भाषा में कई समाचार वेब पोर्टल और यूट्यूब चौनल हैं, जो सफलतापूर्वक खबरें लोगों तक पहुँचा रहे हैं। 'वायर उर्दू' एक बड़ा नाम है। हालांकि, 'वायर इंग्लिश' और 'वायर हिंदी' की तरह 'वायर उर्दू' को उतने संसाधन नहीं मिले हैं, जिससे यह आशंका उत्पन्न होती है कि वैकल्पिक सेक्युलर मीडिया भी उर्दू को उसका पूरा हक देने में पीछे है।

उर्दू अखबारों पर कई बार 'कम्युनल' और 'मुस्लिम–कट्टरपंथी समर्थक' होने के आरोप लगाए जाते हैं। सांप्रदायिक प्रोपेगंडा के कारण इन्हें 'मुसलमानों का अखबार' समझा जाता है। ऐसे आरोपों में कोई सच्चाई नहीं होती। इनका मुख्य उद्देश्य उर्दू अखबारों के बहाने मुसलमानों को निशाना बनाना होता है। उर्दू अखबारों को खारिज करने वाले या तो इसके इतिहास से अनभिज्ञ होते हैं या जानबूझकर इसे दबाने का प्रयास करते हैं।

उर्दू पत्रकारिता का इतिहास दो सौ साल से भी पुराना है, और यह गौरवमयी है। संभवतः उस समय हिंदी अखबारों का प्रकाशन शुरू भी नहीं हुआ था। उर्दू का पहला अखबार 'जाम–ए–जहानुमा' सन् 1822 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। यह अखबार किसी मुसलमान ने नहीं, बल्कि पंडित हरिहर दत्त नामक एक गैर–मुस्लिम ने शुरू किया था। उर्दू पत्रकारिता ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। ध्यातव्य है कि उर्दू के सहाफी मौलवी मोहम्मद बाकिर ने सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों के खिलाफ साहसिक पत्रकारिता की। बाद में अंग्रेजों ने उन्हें पकड़कर तोप से उड़ा दिया था।

बाद के वर्षों में उर्दू पत्रकारिता ने कई साहसी और प्रतिबद्ध पत्रकारों को जन्म दिया। मौलाना अबुल कलाम आजाद और हसरत मोहानी जैसे पत्रकारों ने अपने अखबारों में अंग्रेजों के जुल्म और शोषण के खिलाफ जमकर लिखा और स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उर्दू के नारों, जैसे 'इंकलाब जिंदाबाद', ने स्वतंत्रता आंदोलन में जोश भरने का काम किया। न केवल मुसलमान बल्कि कई गैर–मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानियों ने भी राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर उर्दू में शायरी की, जो आज भी हमारे लबों पर है। शहीद–ए–आजम भगत सिंह के कई लेख उर्दू में मिलते हैं।

सन् 1945 में जवाहरलाल नेहरू द्वारा स्थापित 'कौमी आवाज' उर्दू अखबार में मुस्लिम और गैर–मुस्लिम पत्रकारों ने समान रूप से योगदान दिया। कुलदीप नैयर

और मोहन चिरागी जैसे कई गैर–मुस्लिम पत्रकारों ने उर्दू पत्रकारिता को समृद्ध किया है। स्वतंत्रता के बाद भी उर्दू पत्रकारिता ने अपनी प्रासंगिकता बनाए रखी। चाहे वह विभाजन का मुद्दा हो, सांप्रदायिक दंगे हों, या बाबरी मस्जिद–राम जन्मभूमि विवाद, उर्दू पत्रकारिता ने हमेशा धर्मनिरपेक्ष विचारधारा को अपनाया।

आज उर्दू पत्रकारिता भारतीय मीडिया का एक अहम हिस्सा है। भारतीय मीडिया जिन समस्याओं का सामना कर रहा है, वे ही चुनौतियाँ उर्दू पत्रकारिता के सामने भी हैं। मुख्यधारा मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती डिजिटल मीडिया का उभार है, और उर्दू पत्रकारिता भी इससे अछूती नहीं है। स्मार्टफोन, कंप्यूटर और इंटरनेट की बढ़ती पहुँच के कारण अखबारों की मांग लगातार घट रही है। लोग अब समाचार–पत्र खरीदने और पढ़ने के बजाय ऑनलाइन समाचार देखना या पढ़ना अधिक पसंद कर रहे हैं। नई पीढ़ियों में अखबार और पत्रिकाओं के प्रति एक तरह की उदासीनता देखी जा रही है।

कोरोना महामारी ने अखबारों पर गहरा और नकारात्मक प्रभाव डाला है। अखबार बेचने वाले वेंडरों का धंधा लगभग बंद हो गया, और उनकी पूंजी डूब गई। महामारी के दौरान लोगों को मोबाइल पर खबरें पढ़ने की आदत लग गई, जिससे अखबारों की बिक्री में भारी गिरावट आई। पहले जहाँ सड़कों पर अखबार बेचने वाले दिखते थे, अब कई जगहों पर अखबार आसानी से उपलब्ध नहीं होते। विशेषकर दक्षिण दिल्ली में, पेपर बेचने वाले बहुत कम दिखाई देते हैं। आज अखबार अपनी लागत से भी कम कीमत पर बिक रहे हैं, फिर भी पाठकों की संख्या घट रही है।

'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' (AI) के आगमन के बाद अखबारों में नौकरियों की छंटनी तेजी से बढ़ रही है। विशेषकर संपादन से जुड़े जॉब्स कम होते जा रहे हैं, क्योंकि अब एडिटिंग का काम (AI) से किया जा रहा है। हालांकि, तकनीक के विकास के अपने फायदे भी हैं। डिजिटल मीडिया के आगमन के साथ वंचित तबकों को एक आवाज मिली है। लेकिन छोटी आवाजों को दबाने के लिए भी कई तरह की साजिशें हो रही हैं। सरकार बेबाक सोशल मीडिया को नियंत्रित करने के लिए सख्त कानून ला रही है। फिर भी, यह भी सच है कि आज किसी भी खबर को पूरी तरह से दबाना आसान नहीं है। बड़े मीडिया घरानों का एकाधिकार टूटने लगा है, और अब कई ऐसे पत्रकार हैं जिन्हें मुख्यधारा मीडिया में जगह नहीं मिली, वे डिजिटल प्लेटफॉर्म के जरिए बेहतरीन काम कर रहे हैं।

सोशल मीडिया अखबारों के लिए एक बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। एक समय था जब पाठक और राजनेता अगले दिन के अखबारों का बेसब्री से इंतजार करते थे, लेकिन अब सोशल मीडिया के माध्यम से प्रेस कॉन्फ्रेंस का सीधा प्रसारण हो जाता है। यही कारण है कि रिपोर्टर्स की नौकरियाँ कम होती जा रही हैं, और उर्दू अखबार भी इससे अछूते नहीं हैं। अब कई बार अखबार सोशल मीडिया से ही खबरें उठाकर मामूली बदलाव के साथ प्रकाशित कर देते हैं। इससे लागत में कटौती तो हो रही है, लेकिन रिपोर्टर्स को फील्ड में जाकर खबरें कवर करने और जनता के साथ सीधा संवाद करने के कम मौके मिल रहे हैं।

जब एक पत्रकार खुद किसी प्रेस कॉन्फ्रेंस को कवर करता है, तो उसे जमीनी सच्चाई का अनुभव होता है। मगर अब नेताओं ने प्रेस कॉन्फ्रेंस से बचना शुरू कर दिया है और सोशल मीडिया के जरिए अपनी बात जनता तक पहुंचाने लगे हैं, जिससे पत्रकारों के तीखे सवालों से भी बचा जा सके। यह प्रवृत्ति उर्दू अखबारों पर भी दिख रही है, जहाँ रिपोर्टिंग की जगह खबरें सिर्फ सोशल मीडिया से ली जाती हैं।

अखबारों का पहला दायित्व जनता के सवालों को सत्ता तक पहुँचाना है। अगर यह नकारात्मक रुझान जारी रहा और रिपोर्टिंग की अहमियत को नजरअंदाज किया गया, तो यह लोकतंत्र के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। लोकतंत्र की असली ताकत असहमति का आदर है। अगर लोगों को अपने विचार व्यक्त करने का मौका न मिले और सरकार की गलत नीतियों का विरोध करने की जगह न हो, तो लोकतंत्र को तानाशाही में बदलने में देर नहीं लगेगी।

उर्दू पत्रकारिता भी उन्हीं बड़ी समस्याओं का सामना कर रही है जिनसे अन्य मीडिया हाउस जूझ रहे हैं। अन्य भाषाओं के अखबारों की तरह, अधिकांश उर्दू अखबारों में पत्रकारों, खासकर रिपोर्टर्स, की संख्या लगातार घट रही है। यहां तक कि जब भर्तियां होती हैं, तो वे अधिकतर 'डेस्क जॉब्स' के लिए ही होती हैं। उर्दू अखबारों में कम रिपोर्टरों के कारण, वे अकसर अंग्रेजी और हिंदी मीडिया पर निर्भर रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उर्दू पत्रकारिता में अनुवाद पत्रकारिता का प्रभुत्व है, जहां खबरें मूल रूप से अंग्रेजी या हिंदी से अनुवादित की जाती हैं। खोजी और शोध–आधारित पत्रकारिता

लगातार कम हो रही है।

अखबारों में काम करने वाले पत्रकारों और स्टाफ की सैलरी भी हिंदी और अंग्रेजी अखबारों के मुकाबले में बहुत कम होती है, जबकि उनसे अपेक्षाएं अधिक होती हैं। शीर्ष स्तर पर बैठे संपादक अपनी सैलरी तो प्रबंधन से बढ़वा लेते हैं, मगर निचले स्तर पर काम करने वाले सहयोगियों की उन्हें कोई चिंता नहीं होती।

उर्दू अखबारों की एक और समस्या विशेषज्ञ संपादकों की कमी है, खासकर संपादकीय पृष्ठों के लिए। खबरों के विश्लेषण के लिए भी उनके पास योग्य पत्रकारों की कमी होती है। इसके लिए सीधे तौर पर प्रबंधन जिम्मेदार है, क्योंकि विशेषज्ञों को रखने पर उन्हें उचित सैलरी देनी पड़ेगी, जिससे वह बचना चाहते हैं। यही कारण है कि अंग्रेजी अखबारों में छपी खबरों और विश्लेषणों का अनुवाद कर पृष्ठ भरे जाते हैं। आर्थिक खबरें भी उर्दू अखबारों में कम ही देखने को मिलती हैं।

उर्दू मीडिया में भी सामाजिक विविधता की भारी कमी है। जिस तरह हिंदी और अंग्रेजी मीडिया में दलित, आदिवासी और पिछड़ी जातियों के पत्रकारों की संख्या कम है, वैसी ही स्थिति उर्दू पत्रकारिता में भी है। संपादकों की कुर्सियों पर ऊंची जाति के अशरफ मुसलमान ही बैठे हैं। अगर कहीं पसमांदा समाज के मुस्लिम पत्रकार दिखते भी हैं, तो वे प्रबंधन के दबाव में मुस्लिम समाज के भीतर जाति, लिंग और वर्ग पर आधारित भेदभाव के बारे में खुलकर नहीं लिख पाते हैं।

भारत के मीडिया में ऊंची जातियों का वर्चस्व एक गंभीर समस्या है। उदाहरण के लिए, पिछड़ी जातियों और दलित समुदायों की देश की कुल आबादी में एक चौथाई हिस्सेदारी होने के बावजूद, प्रमुख अखबारों के संपादकीय विभागों में दलित या आदिवासी प्रधान संपादक मिलना दुर्लभ है। मीडिया संस्थान लोकतंत्र की आवाज़ तो उठाते हैं, लेकिन अपने भीतर लोकतांत्रिक संरचना को लाने के प्रति उदासीन रहते हैं।

एक दलित पृष्ठभूमि का पत्रकार समाज की समस्याओं को गहराई से समझ सकता है और उन्हें उजागर करने की क्षमता रखता है, क्योंकि जिसने दर्द सहा है, वही उस दर्द के खिलाफ प्रभावी ढंग से आवाज़ उठा सकता है। इसीलिए मीडिया संस्थानों में हाशिए पर खड़े समुदायों का प्रतिनिधित्व बढ़ाना बेहद जरूरी है। उर्दू मीडिया को भी इस दिशा में कदम उठाने की जरूरत है। उर्दू अखबारों के मालिकों को महिला पत्रकारों और अन्य हाशिए पर मौजूद समुदायों को शामिल करने की दिशा में गंभीरता से विचार करना चाहिए, ताकि उर्दू पत्रकारिता विविधता और समावेशिता का सच्चा प्रतिबिंब बन सके।

कई उर्दू अखबार सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के लिए सनसनीखेज खबरें प्रकाशित करते हैं और प्रतिस्पर्धा में अपने सिद्धांतों से समझौता कर लेते हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी अखबारों में अधिक आम देखी जाती है। साम्प्रदायिकता से जुड़ी खबरों में हिंदी अखबार अकसर देश की विविधता और बहुलता को नजरअंदाज कर देते हैं। अंग्रेजी अखबारों में भी कुछ अपवादों को छोड़कर, सरकार से तीखे सवाल पूछने का साहस कम ही दिखता है। उर्दू अखबार इस संदर्भ में थोड़े अलग हैं। चूंकि आज के समय में उर्दू पढ़ने वाले अधिकांश लोग समाज के वंचित वर्ग से आते हैं, इसलिए इन अखबारों में उन वर्गों की समस्याओं को प्रमुखता दी जाती है। उर्दू अखबारों में सरकार की गलत नीतियों को उजागर करने की प्रवृत्ति हिंदी अखबारों की तुलना में अधिक नज़र आती है, क्योंकि ये अखबार वंचित वर्ग की आवाज़ उठाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

हालांकि, डिजिटल मीडिया के तेजी से बढ़ने के कारण प्रिंट मीडिया की आमदनी में गिरावट आई है। इसका सबसे अधिक प्रभाव छोटे उर्दू अखबारों पर पड़ा है, जिनके लिए विज्ञापन पाना बेहद मुश्किल हो गया है। फर्जी अखबारों पर रोक लगाने और भ्रष्टाचार खत्म करने के नाम पर उर्दू अखबारों को विज्ञापन प्राप्त करने के लिए कई शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं, जो छोटे अखबारों के लिए एक बड़ी चुनौती है। इस वजह से कई छोटे उर्दू अखबार बंद हो गए हैं, और उनके साथ काम करने वाले पत्रकार बेरोजगार हो गए हैं, जिससे उनकी आजीविका पर संकट आ गया है।

लोकतंत्र की कामयाबी के लिए यह जरूरी है कि हम छोटी–छोटी आवाजों को भी प्रमुखता दें। आज हमारे सामने कई अखबार, न्यूज चैनल और डिजिटल प्लेटफार्म मौजूद हैं, लेकिन उनमें से ज्यादातर एक ही सुर में सत्ता का महिमामंडन करते नज़र आते हैं। यह सब लोकतांत्रिक मूल्यों के खिलाफ है। यही वजह है कि हमें उर्दू पत्रकारिता के विकास के लिए आगे आना होगा, क्योंकि यह वंचित समुदायों की तर्जुमानी करती है। ▫▫

लेखक : स्वतंत्र पत्रकार हैं और नियमित रूप से उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में लिखते हैं।

ईमेल : debatingissues@gmail.com